वर्ष-1, अंक-2, जनवरी - मार्च 2024 E-ISSN : 2584-2900

बुन्देली लोक साहित्य में चित्रित ग्राम्य जीवन

आशीष कुमार तिवारी
सह-प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

शोध संक्षेप

मध्यप्रदेश में बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, मालवा और निमाड़ चार जनपदीय सांस्कृतिक धाराएँ हैं। मालवी, निमाडी, बघेली और बुन्देली बोली का आश्रय लेकर इन क्षेत्रीय संस्कृतियों का विकास हुआ है और वृहद भारतीय लोक सांस्कृतिक परम्परा के विकास में इनका अमूल्य योगदान है। बुन्देली पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोली है। जब कोई बोली साहित्य सृजन के क्षेत्र में अपना स्थान बना लेती है तो वह उपभाषा की संज्ञा प्राप्त कर लेती है। जहाँ तक बुन्देली का प्रश्न है, इसमें इतना अधिक साहित्य लिखा जा चुका है कि आज वह अवधी ब्रज और भोजपुरी के समानान्तर खड़ी होने की सामर्थ्य रखती है। लोक जीवन एवं लोक मानस से जुड़ी बुन्देली बोली एवं उसका साहित्य विशेषतः लोकगीतों में भारतीय ग्रामीण समाज का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। ग्राम्य जीवन के चितेरे यह बुन्देली लोकगीत अपनी मिठास और खनक लिए अपना महत्व रखते है।

बीज शब्द

क्षेत्रीय, संस्कृति, व्यवहार, परम्पराएँ, आश्रय, अमूल्य

शोध विस्तार

बुन्देली साहित्य का इतिहास बुन्देलखंड के इतिहास से जुड़ा हुआ है। इसके लिए बुन्देली समाज व उसके साहित्य को मूल्यांकित किया जाना जरूरी है। बुन्देली साहित्य जहाँ बुन्देली समाज को गतिशीलता प्रदान करता है वही वह उसके आचार-विचार कर्मकाण्ड, लोक-रूढियाँ, विश्वास, धार्मिक परम्पराएँ आदि का उद्घाटन भी करता है। बुन्देली के उद्भव और विकास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि विक्रम की नवीं सदी के साहित्य में नाथों सिद्धों,संतो और उपदेशको

वर्ष-1, अंक-2, जनवरी - मार्च 2024 E-ISSN : 2584-2900

की भाषा में किसी स्थानीय भाषा का आग्रह नहीं है। इनमें 'बोलियो की नींव' है जिनमें भाषा का विकास दिखाई देता है। बुन्देली का अपना विस्तृत इतिहास है, जो विक्रमी दसवीं सदी से मौखिक और लिखित रूप में स्पष्ट परिलक्षित होने लगता है। विक्रम की चौदहवीं सदी से सत्रहवीं सदी तक बुन्देलखण्ड में जो काव्य रचा गया वह रीति भक्ति काव्यधारा का साहित्य है। विक्रम की सत्रहवीं से अट्ठाहरवीं सदी के मध्य का काल सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय उन्मेष और श्रृंगार रस के उत्कर्ष का काल था। वास्तव में यह समय बुन्देली साहित्य का भी 'स्वर्ण युग' था, क्योंकि इस काल में इस साहित्य में हरि सेवक मिश्र, पृथ्वी सिंह रसनिधि, कृष्ण कवि, खण्डन कायस्थ, गुमान मिश्र, बोधा आदि कवि जुड़े। पद्माकर के काव्य में बुन्देली जनजीवन और संस्कृति व्यंजित हुई है। लोक कवि ईसुरी ने भी शास्त्रपरक काव्य रचना की। विक्रम की उन्नीसवीं सदीं के बाद आधुनिक काल तक आते-आते बुन्देली रचनाओं में अनेक प्रकार की चेतना दिखाई देती है। इस काल के प्रारम्भिक कवियों में रसिकेश, बलदेव प्रसाद, कली कवि, वृषभानु कुवरि, चतुरेश, लघुदास नीखरा, जैसे कवि है। मदन मोहन द्विवेदी ने लक्ष्मीबाई पर आधारित रासो काव्य का प्रणयन किया।

भवानीप्रसाद कहावतों को आधार बनाकर एवं मुहावरों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञापन करते हैं। सुखराम चौबे गुणाकर, गौरीशंकर शर्मा,जनन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी जानकी प्रसाद द्विवेदी शिव सहाय चतुर्वेदी रामचन्द्र भार्गव आदि अतीत के जीवन मूल्यों एवं काव्य शैलियों को अपनाते है। राष्ट्रीय काव्य धारा घासीराम व्यास एवं रामचरण हयारण 'मित्र' के काव्य में मुखरित हुई है। पंडित ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, भैयालाल व्यास,लक्ष्मीनारायण पथिक ने भावना के स्तर पर मानव को परखा है। अत्याधुनिक काल में डॉ. बलभद्र तिवारी, कैलाश मडबैया, गंगा प्रसाद, बरसैया गुप्त, कपिल देव तैलंग, महेश कुमार मिश्र 'मधुकर', गुणसागर सत्यार्थी, अवधेश, संतोष सिंह बुन्देला, बाबूलाल खरे, रघुवीर श्रीवास्तव, दुर्गेश दीक्षित, माधव शुक्ल मनोज, लोकेन्द्र सिंह नागर, वासुदेव प्रसाद खरे, ओम प्रकाश सक्सेना आदि आते है, जो बुन्देली काव्य साहित्य के नये आधार स्तम्भ हैं।

समकालीन ग्रामीण परिवेश, व्रतो, त्योहारों और प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रभावशाली चित्रों के साथ आधुनिक जीवन के यथार्थ का सुन्दर चित्रांकन इस नये काव्य में हुआ है। इस काव्य से जुड़ी संगीतमय विधा लोकगीत है। लोक जीवन के सुख-दुख, उल्लास हर्ष विषाद और संघर्ष को

वर्ष-1, अंक-2, जनवरी - मार्च 2024 E-ISSN : 2584-2900

अभिव्यक्त करते हुए लोकगीत कोटि-कोटि हृदयों का प्रतिनिधित्व करते है। लोकगीत लोक जीवन में इतने गहरे पैठे हुए है कि ये जनजीवन के अविच्छिन्न अंग बन गये हैं। ग्रामीण समाज लोकगीतों के दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखता आया है। लोक गीतों की यह परम्परा आदि युग से चली आ रही है। जिससे लोक संस्कृति अपने मूलरूप में झंकृत होती है। ग्राम्य जीवन का सुन्दरतम प्रतिबिम्ब लोक संगीत में कृत्रिमता के रूप में का दिखाई पड़ता है। इसमें ग्राम्य जीवन सीधा-सादा परिचय रहता है। वे व्यक्ति के बाह्य का भी अपेक्षा जीवन के साथ-साथ उसके मानसिक भावों परिचायक होते हैं। परन्तु सूक्ष्मता की स्थूलता और स्पष्टता का अधिक महत्व होता है। लोकगीत संक्षिप्त सरल, स्पष्ट, स्वाभाविक, सुन्दर, अनुभूतिजन्य और संगीतमय होते है। सभी लोकगीत संगीत से अनुप्राणित होते हैं। बुन्देलखण्ड के ग्राम्य जीवन को चित्रित करते यह लोकगीत अपना महत्व बनाये हुए है। बुन्देलखण्ड संस्कृतिक विरासतों को समेटे एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में भारत के मानचित्र पर अंकित है। बुन्देली साहित्य के मनभावन लोकगीतों में ग्राम्य जीवन के आचार-विचार, व्यवहार एवं परम्पराओं के निर्वहन को उकेरा है।

बुन्देली लोकगीत मूलतः लोक साहित्य का अभिन्न अंग है। लोक साहित्य चंकि ग्रामीणता एवं ग्रामीण परिवेश की भावभूमि पर खड़ा निखरा एवं पनपा है अतः इन गीतों में बुन्देल खण्ड की ग्रामीण परम्पराओं, संस्कारों एवं संस्कृति को देखा जा सकता है। बुन्देली लोक-संस्कृति मानवीयता का अनुपम दस्तावेज इसके लोक- जीवन के साँस्कृतिक पक्ष में लोक-संगीत, लोकगीत, लोक-नृत्य, लोकवाद्य, लोक-कथाएँ, लोकगाथाएँ, बुझौअल, पहेली, लोकोक्तियाँ, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, व्रत-पूजन, अनुष्ठान, लोक-देवता, ग्रामदेवता, मेले आदि का समावेश है। बुन्देली संस्कृति का अनुशीलन किया जाए तो हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड का जनजीवन सामान्यतः कृषि पर ही आधारित है। बुन्देलखण्ड के शहरी संस्कारों पर भी किसान संस्कृति की पूरी झलक दिखाई पड़ती है। यह संस्कृति गुफाओं में प्राचीन आदिमानव के शैलचित्रों की संस्कृति के अध्ययन से प्रारम्भ होकर आधुनिक बुन्देली संस्कृति के आँचल में दिखाई देती है। रूढ़िवादी बाह्य आडम्बरों की प्रधानता होते हुए भी साँस्कृतिक दृष्टि से बुन्देलखण्ड अत्यधिक समृद्ध और सम्पन्न है। एक ओर अनेक परम्पराएँ यहाँ के जन-समाज को आदर्शों से बाँधती हैं, तो दूसरी ओर कठिन श्रम को जीवन का आधार भी बताती हैं। अपनी आन-बान को निभाने में बुन्देलीजन

वर्ष-1, अंक-2, जनवरी - मार्च 2024 E-ISSN : 2584-2900

अपना सर्वस्व न्यौछावर करने से पीछे नहीं हटते। गोया कि यहाँ की संस्कृति ईमानदारी और निष्ठा पर टिकी हुई है। इस अर्थ में सचमुच बुन्देली किसान संस्कृति में लोकसंस्कृति का अधिक महत्व है। किसान संस्कृति में लोकगीतों का जन्म श्रम से उत्पन्न थकान को कम करने के लिए हुआ। किसान का जीवन अधिक श्रमशील जीवन है और इनके खेती-किसानी से जुड़े विभिन्न कायर्यों के लिए हैं, जो इन्हें संस्कारित करते रहते हैं। लोक-जीवन का सर्वश्रेष्ठ सजीव रूप किसान संस्कृति में दिखाई पड़ता है और लोकगीतों का यह संस्कार उन्हें अपने कार्य को अधिक तल्लीनता और आनन्द से करने के लिए प्रेरित करता है।

बुन्देली लोक-संस्कृति में कला, साहित्य और अध्यात्म का संस्कार गहरे स्तर तक छाया हुआ है। "बुन्देली जन-जीवन में चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्यकला, संगीत कला और साहित्य आदि कलाएँ प्रमुख रूप से प्रचलित हैं। त्योहारों पर चौक पूरने (अल्पना बनाने) का विधान है। त्योहारों पर सतिया (स्वास्तिक) एवं देवी-देवताओं के चित्र बनाना यथा नागपंचमी पर नाग के चित्र बनाकर पूजना, महालक्ष्मी में मिट्टी के हाथी की पूजा, गणेशोत्सव में गोबर के गणेश जी की पूजा और दशहरा में काली जी की पूजा, देवउठनी एकादशी में ग्वालिन की पूजा, अन्नकूट में गोबर के गोवर्धन की पूजा तथा देवउठनी एकादशी पर सुई से जमीन पर सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु के चरण आदि के चित्र बनाकर पूजा करना बुन्देली जन की कलाप्रियता का परिचायक है।"[1]

इन अवसरों पर इनको मेवा-मिठाई की अल्प उपलब्धता के चलते वे महुआ, बेर, गुनगुच, सीताफल आदि प्रकृति द्वारा दिए गए जंगली फलों को खाकर इसकी पूर्ति करते हैं। बुन्देली कहावत भी है कि, 'महुआ मेवा बेर कलेवा, गुनगुच बड़ी मिठाई। बुन्देली लोकसंस्कृति में वैदिक परम्परा के सोलहों संस्कारों के तत्त्व विद्यमान हैं, लेकिन वे इसे बेहद सादगी के साथ निर्वहन करते हैं। इस संस्कृति में मुंडन, कर्णछेदन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों के अलावा नैतिक मूल्यों का नवीन प्रादुर्भाव देखने को मिलता है, जिसमें प्रकृति-प्रेम, देश-प्रेम, दया, करुणा, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, भक्ति आदि की संस्कार रूप में परिणति हुई है। यहाँ के त्योहारों में गोवर्धन पूजा के गीत, होली के गीत एवं कुआँ पूजन के गीत आदि का अपना विशिष्ट स्थान है तथा माँगलिक कार्यों में लोक- देवताओं का अधिक महत्व है। किसी भी शुभ कार्य को करते समय अपने लोक-देवता, लाला हरदौल, दूल्हादेव आदि को याद करते हैं। जैसे- विवाह संस्कार के समय प्रथम निमन्त्रण लोक-देवता लाला हरदौल को दिया जाता है। बुन्देलखण्ड में 'सती माता'

वर्ष-1, अंक-2, जनवरी - मार्च 2024 E-ISSN : 2584-2900

की पूजा अधिक लोकप्रिय है। यहाँ के गाँवों में सती के चौरे बने हैं। त्याग-बलिदान के कारण महान नारियों ने भी देवी वर्ग में स्थान पा लिया है। यहाँ के ग्रामीण इलाके में न जाने कितनी लोक-देवी और देवता हैं, जिनकी गणना करना सम्भव नहीं है। "विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा-उपासना बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति की आत्मा है। पीढ़ी-दर- पीढ़ी चले आ रहे ये देवी-देवता बुन्देलखण्ड की माटी से इतने एकाकार हो गए हैं कि यदि बुन्देली धरा से इन्हें निष्कासित कर दिया जाए, तो यहाँ की लोक-संस्कृति श्रीहीन हो जाएगी।"[2]

बुन्देलखण्ड की लोक-संस्कृति तीर्थस्थल की दृष्टि से भी काफी समृद्ध है। यहाँ ताप्ती, केन, बेतवा, चम्बल, टोंस एवं शिप्रा आदि नदियों का विशिष्ट वैभव और महत्व है। बुन्देली संस्कृति में एवं तीज-त्योहारों के अवसर पर लोगों में सामूहिकता दिखाई देती है। यहाँ के लोकगीतों में एक ओर आध्यात्मिकता दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर इनमें अभावग्रस्त समाज की समस्याएँ भी दिखती हैं। आध्यात्मिक गीतों की एक झलक कुछ इस प्रकार है -

"चल मन वृन्दावन में रइए, जनम लाभ कछु लइए।
जह विहरत नित जुगल माधुरी, तिनके दर्शन पइए।
भूख लगे तब वृजवासिन के, टूक माँग के खइए।
प्यास लगे जमुना जल पीके, सुधा सरस सुख पइए।
'सूरश्याम' वंसीवट के, राधे"राधे कइए।-[3]

बुन्देलखण्ड में कार्तिक स्नान पर्व और नवरात्र में महिलाएँ राम-कृष्ण और माँ दुर्गा के चरित्र विषयक गीत प्रभात बेला में झुंडों में निकलकर गाती है। बुन्देली भक्ति गीत की यह बानगी सुनते ही बनती है -

"अम्बा, अरे को परो न टारो, सब जग गओ तुम्हारो ।
गलिन-गलिन, द्वारन-द्वारन पै भटक भटक के हारो।"[4]

बुन्देली लोकगीतों में लाला हरदौल के गीत, ईसुरी की फागें आदि का विशेष महत्व है। इसके अलावा बुन्देली लोकगीतों में प्रमुख रूप से लगुन, साँझी, वर की खोज, बनरा बनरी, बारामासी, गारी, माता पूजन, मटियानी, अरगौ, बीदौरी, अलगोजा, विरहुल, संजूना, हल्दी-तेल के गीत, मेंहदी, मड़वा, भात-चीकट, विनायकी, दूल्हा गौरेयाँ-जुगिया, ऊबनी के गीत, द्वारचार-टीका, चढ़ाव के गीत, सुहाग लेने के गीत, भाँवर के लिए दूल्हे का आगमन, कन्यादान, भाँवर गीत, पाँव

वर्ष-1, अंक-2, जनवरी - मार्च 2024 E-ISSN : 2584-2900

पखरई का गीत, माड़ें पूजन का गीत, ज्यौनार के गीत, ज्यौनार गारी, विवाह के अन्य अवसरों के गीत, कंकन-वन्द छोड़ना, कुँवर कलेवा के गीत, दायजा सौंपने का गीत, मुँह मड़ई, समधी की विदा, डलिया-विदा लड़की की, गैल रोकने का गीत, बहू-बेटा लेने का गीत, सुहाग रात के गीत, दादरे एवं बुन्देली बन्ना गीत आदि प्रसिद्ध लोकगीत प्रचलित हैं। कुछ बुन्देली लोकगीतों की छटा इस प्रकार देखी जा सकती है। जैसे -

लगुन के गीतों में

"कोरे-कोरे कागज मँगाओ राजा बाबुल,
सो सुध-बुध लगुन लिखाओ हो रम्मा।
सुरन गौ को गोबर मँगाओ राजा बाबुल,
सो ढिक धर अँगन लिपाओ हो रम्मा।
गज मोतिन के चौक पुराओ राजा बाबुल।"[5]

बारामासी गीतों में

"चैत मास जब लागौ सजनी बिछुरे कुँअर कन्हाई।
कौन उपाय करें जा ब्रज में घर अँगना न सुहाई।।
बैसाख मास जब लागौ सजनी घामें जोर जनायौ।
पलक सेजरियन नींद न आई कान्ह कुँअर घर नाहीं।।
जेठ मास जब लागौ सजनी चारऊँ दिसि पवन झकोरे।
ऐसी पवन उठी जा ब्रज में अंग-अंग कर डोले।।"[6]

निर्गुण गीत भी बुन्देली गीतों का केन्द्रीय रस है। इन गीतों में

"भज मन राम
सिया भगवानें ! संग कछु ना जानें !
धन सम्पत सब माल खजानें, रै जें एई ठिकानें।।
भाई बन्दऔ कुटुम कबीला, जे सब स्वारथ जानें ।।
कैंडा कैसौ छोड़ 'ईसुरी', हंसा होत रमानें।।"[7]

वर्ष-1, अंक-2, जनवरी - मार्च 2024 E-ISSN : 2584-2900

इसी क्रम में बुन्देली लोकगीतों में ईसुरी की फागों का अपना अलग रंग है। इन फागों के माध्यम से जनकवि ईसुरी ने बुन्देलखण्ड के जनजीवन को खुशहाल और जीवन्त बनाया है। इसमें जीवन के विविध रंग सुख-दुःख, भक्ति-दर्शन, गरीबी-अमीरी, लोक-परलोक आदि का रूप समाहित है। इनके फागों में काव्य का यथार्थ विषय प्रेम ही है, जिन्हें ईसुरी ने बहुत ही सुन्दर ढंग से उकेरा है। जैसे-

"तोरे नैना मतवारे, तिन घायल कर डारे ।
खंजन खरल सैल से पैने, बरछन से अनयारे।
तरबारन सैं कमती नइयाँ, इनसें सबरई हारे ।
'ईसुर' चले जात गैलारे, टेर बुला कैं मारे।"[8]

मनुष्य जीवन में भक्ति और अध्यात्म अहम् पहलू है। इसके बिना हम जीवन के अन्तिम सत्य को समझ नहीं सकते हैं। भक्ति-दर्शन एवं अध्यात्म के मर्म की मीमांसा को लेकर भी बुन्देली लोक कवि ईसुरी ने लोकगीतों का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। बुन्देली लोकगीतों की स्वर सरिता में निमग्न होकर न जाने कितने क्षेत्रों के लोग अपनी अन्तःपीड़ा का शमन करते हैं। खेतों में कठिन परिश्रम करती हुई महिलाएँ लोकगीतों का गायन करते हुए तन्मय हो जाती हैं। बुन्देलखण्ड के लोकगीतों जैसी सरलता, सहजता अन्यत्र दुर्लभ है। जिनकी मधुर ध्वनि से थकान अपने-आप दूर हो जाती है। वातावरण झंकृत होकर झूम उठता है। खेतों की मिट्टी की सुगन्ध एवं लोक-संस्कार उनके गीतों में सुनाई पड़ते हैं। यहाँ का अन्नदाता अपनी धरती की मिट्टी से बेहद प्रेम करता है और वह उसे धरती माँ मानता है। धरती की खुशहाली के लिए वह प्रकृति से भी प्रेम करता है। इस सम्बन्ध में यह कहावत अतिप्रसिद्ध है-

"लाल बरसै ताल भर। सेत बरसै खेत भर।
कारो बरसें पारो भर। जब उठें धुआँधारे।
तब आवैं नदियाँ-नारे। माघ सप्तमी ऊजरी बादर मेघ करन्त।
तो आषाढ़ में भड्डरी घनों मेघ बरसन्त।"[9]

वर्ष-1, अंक-2, जनवरी - मार्च 2024 E-ISSN : 2584-2900

निश्चित रूप से जीवन में लोकगीतों का अपना विशेष महत्व है। लोकगीत धरती के गीत हैं, ये जीवन के गीत हैं, ये विजय के गीत हैं और ये हमारी आशा के गीत हैं। इसके बिना जीवन के रंग का आनन्द सम्भव नहीं हो सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. लोक-संस्कृति की रूपरेखा/ कृष्णदेव उपाध्याय/ लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज/ पृ.स.17
2. साहित्य : समकालीन सरोकार/ डॉ. रंजना मिश्रा/ अनुज्ञा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली/पृ.स.110
3. बुन्देलखण्ड में स्त्री / सम्पादक प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी/ सामयिक प्रकाशन, नयीदिल्ली / पृ.स.181
4. बुन्देलखण्ड : संस्कृति एवं साहित्य/ सम्पादक भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग/ पृ.स.140
5. बुन्देली काव्य-परम्परा/ डॉ.बलभद्र तिवारी, प्रकाशक बुन्देली पीठ,सागर/ पृ.स.741
6. वही/ पृ.स 754
7. वही/ पृ.स 543
8. ईसुरी की फागें, सम्पादन एवं अनुवाद, घनश्याम कश्यप, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद/पृ.स.18
9. बुन्देली काव्य-परम्परा, डॉ. बलभद्र तिवारी, बुन्देली पीठ, सागर/पृ.स.25